REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 10 | ISSUE - 10 | JULY - 2021

प्राचीन भारतीय नीति निर्देशक ग्रन्थ : एक अध्ययन

डॉ. विजय कुमार
विभाग प्रभारी एवं असि0 प्रोफेसर – प्राचीन इतिहास विभाग,
इन्द्रासन सिंह स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी राजकीय महाविद्यालय, पचवस, बस्ती।

शोध सारांश –

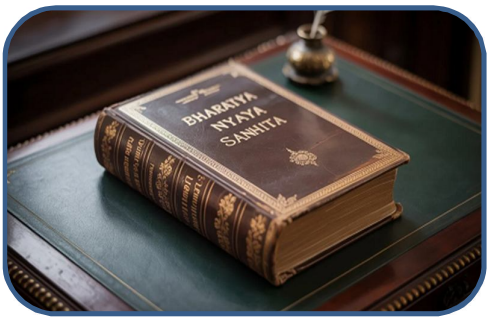

प्राचीन भारत में लिखे गए धर्मशास्त्र ही राज्य की नीतियों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करते थे। राजा के कर्त्तव्यों से लेकर राज्य संचालन व सामाजिक नियमों इत्यादि का वर्णन इन ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। कौटिल्य ने राजा के कर्तव्यों को संक्षेप में लिखा है कि अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को न्यायोचित कर लगाने चाहिए और सदैव जनकल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। राजा को अपनी इन्द्रियों पर कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिए, राजा को सभी व्यक्तियों को न्याय प्रदान करना चाहिए और धर्म की सीमाओं का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देना चाहिए। राजा को अपनी जनता में शान्ति और सुख बनाये रखना चाहिए, उसे उद्योगों व वाणिज्य को प्रोत्साहन देना चाहिए और राज्य की प्राकृतिक प्रकोपों के विरूद्ध रक्षा करनी चाहिए। राजा अत्याचारी नही हो सकता था। चाहे वह कुछ बातों में स्वेच्छाचारी रहें क्योंकि वह धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्र के सुस्थापित सिद्धान्तों के अधीन रहता था। वह नहीं हो सकता, क्योंकि प्राचीन भारत में जनता ऐसे राजा को सहन नही कर सकती थी। यद्यपि राजा का पद सर्वोच्च पद था, वह जनता से न तो पृथक था और न उसके लिए विदेशी ही और जैसा चाहे जनता के प्रति व्यवहार करने के लिए स्वतन्त्र भी न था। इस प्रकार प्राचीन मनीषियों ने धर्मशास्त्रों के माध्यम से निर्देशन की जो अमूल्य निधि दी वह अविस्मरणीय है। मनु, शुक्र, वृहस्पति, कामन्दक इत्यादि मनीषियों ने प्राचीन भारत को एक लिखित संविधान देने का अति महत्वपूर्ण कार्य किया। यद्यपि इन सभी में अनेकों मतभेद हैं परन्तु यह राजा के विवेक इत्यादि पर निर्भर करता था कि वह किस तथ्य को कितनी मान्यता दे फिर भी यह निंविवाद है कि ये धर्मशास्त्र वास्तव में प्राचीन भारतीय नीति निर्देशक ग्रन्थ रहे।

मुख्य शब्द – मृगया, मेधातिथि, हीगल, अव्यसनी, नीतिवाक्यामृत, मनोल्लास, बृहस्पति अर्थशास्त्र, कृत्यकल्पतरू, महासन्धि–विग्रहिक

प्राचीन भारतीय नीति निर्देशक ग्रन्थों की कोटि में सबसे प्राचीन स्मृति ग्रन्थ मनुस्मृति थी यह विशिष्ट प्रकार का शास्त्र है। परम्परा के अनुसार यह मनुप्रणीत है। मेधातिथि का कथन है कि ब्रह्मा ने तो बहुसंख्यक आदेशों को क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए– उत्पन्न किया, किन्तु यह रचना (मनुस्मृति) मनु की ही है। नारद ने भी कहा है, मेधातिथि के अनुसार, कि इस बड़ी रचना को, जिसमें एक लाख से ऊपर पद हैं, प्रजापति (ब्रह्मा) ने ही रचाय परन्तु इसे बाद मनु और अन्यों ने संक्षिप्त किया। भारताय कुल्लक ने भी नारद के इसी वर्णन के आधार पर कहा हैं यद्यपि प्रथम धर्मशास्त्र की रचना ब्रह्मा ने की, मनू ने इसे अपनी भाषा में संक्षिप्त किया और उसी रूप में अपने शिष्यों को पढ़ाया। पौराणिक दृष्टि से, मनु मानव जाति के जनक तथा

प्रथम विधिदाता थे। उनका वर्णन प्राचीन भारतीय राजाओं में प्रथम और महानतम राजा के रूप में किया जाता है। इससे स्पष्ट होता कि मनु कोई व्यक्ति न थे, बल्कि महान विधि दाताओं (वेत्ताओं) को दी गयी उपाधि थी। मनु संहिता के वास्तविक रचियताओं ने इसमें सम्मिलित विधियों अधिकारपूर्ण बनाने के लिए मनु नाम धारण किया होगा। वर्तमान समय में मनुस्मृति को जो स्वरूप मिलता है। वह गुरु शिष्य परम्परा के आधार पर सम्भव हुआ है। मनुस्मृति ने राजधर्म पर अर्थात् प्रकाश डाला गया है। इसमें बारह अध्याय हैं जिसमें वर्णित मुख्य विषय निम्नवत प्रकार के हैं– प्रथम अध्याय में विश्व की उत्पत्ति का विवरण है, दूसरे अध्याय में विधि के स्रोत की चर्चा है, तीसरे से छठें अध्यायों में व्यक्ति के जीवन पर चर्चा की गयी है। सातवें अध्याय में राजधर्म, प्रजारक्षण, दण्डोत्पति, दण्ड प्रशंसा, अधर्म दण्ड दोष, न्यायवर्ती इन्द्रियजय, काम क्रोधादि त्याग सन्धि विग्रहादि चिन्ता, सेनापति, आदि के कर्तव्य, दूत की प्रशंसा, जांगलदेशाश्रम, दुर्ग व इनके प्रकार, यज्ञ आदि करना, कर ग्रहण, पात्रदान फल, फलरक्षा दस्यु निग्रह, धर्म कामादि चिन्तन, दूत सम्प्रेषणादि, प्रकृति प्रकार, सन्धि विग्रह काल, शत्रु राज्य, यानविधि, सैन्य परीक्षण, परराष्ट्रपीड़न, मित्र प्रशंसा, शत्रु गुण, उदासीन गुण, आपत्ति में उपाय चिन्तन, अन्नादि की परीक्षा, रहस्य वार्ता श्रवण इत्यादि। आठवें अध्याय में न्यायालय तथा साक्षियों से प्रश्न विधि का उल्लेख है। नवें से बारहवें अध्यायों में कर्मकाण्डों व मोक्ष की चर्चा है। स्पष्ट है राजन्य की ज्ञान की दृष्टि से सातवाँ अध्याय ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मनुस्मृति के नवें अध्याय में राज्य की सप्तांग प्रकृतियों– स्वामी, मंत्री, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड और मित्र की चर्चा की गयी है। मनु ने स्वराष्ट्र, परराष्ट्र, मित्र और शत्रु राष्ट्र व मण्डल राष्ट्र का भी उल्लेख किया है।

मनु ने राज्य कार्य क्षेत्र को मानव जीवन से इतने व्यापक ढंग से सम्बद्ध किया है कि मोटवानी महोदय ने यहाँ तक कहा है कि राज्य द्वारा बनाये जाने वाले अनेक कानून वर्तमानकालीन राजशास्त्र के विद्यार्थियों को समाजवादी प्रतीत होंगे। मनु ने राज्योत्पति में दैवीय सिद्धान्त को स्वीकार किया है। डा० जायसवाल का कथन है कि धर्मशास्त्र के अनुसार विभिन्न देवता राजा के शरीर में आते हैं और वह स्वयं एक महान देवता बन जाता है। मनु ने राजा को देव बनाया है जिससे घृणा करने वालों को निरंकुश शक्तियों से दण्डित किया जाता है। मनुस्मृति में राजा के गुणों एवं कर्त्तत्यों के विशद् चर्चा की गयी है। मनुस्मृति के अनुसार राजा को काम से उत्पन्न दस और क्रोध से उत्पन्न आठ व्यसनों को प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए क्योकि प्रथम प्रकार व्यसनों में आसक्त होने वाला राजा अर्थ तथा धर्म से ही भ्रष्ट हो जाता है और दूसरे प्रकार के व्यसनों में आसक्त होने वाले राजा की आत्मा ही भ्रष्ट हो जाती है अर्थात स्वयं राजा नष्ट हो जाता है। कुछ प्रमुख व्यसन है– मृगया (शिकार), जुआ, दिन में सोना, स्त्री अत्यासक्ति, मद्यपान, नाच–गाने में आसक्ति (काम से उत्पन्न), चुगलखोरी, ईष्या, कठोर वचन, अर्थ दोष (धन का अपहरण) आदि। बहुलर महोदय ने मनुस्मृति में वर्णित राजा के कर्तव्यों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अग्रलिखित प्रकार से विवेचित किया है कार्यपालिका, इसके अन्तर्गत समाज को स्वधर्म पालन को आवश्यक मानते हुए दण्ड की व्यवस्था की गयी है। क्योंकि दण्ड से व्यवस्था रखना सम्भव हो जाता है।

मनुस्मृति में सचिवान शब्द प्रयुक्त हुआ है। राजा को राष्ट्र में सर्वोच्च स्थानीय और प्रजा का एक मात्र भोक्ता कहा गया है। राजा सचिवों की सहायता से, जो सहाय्य कहलाते थे, शासन करता था। सात या आठ मन्त्रियों के परिषद शासन में राजा की परामर्शदात्री थी। इनका प्रधान मुख्यामात्य कहलाता था। राजा अपनी प्रजा से सभा में मिलता था। सोलेटर महोदय ने मनुस्मृति में प्रयुक्त परिषद के आधार पर लिखा है। कि इसका अर्थ ऐसे विद्वान व्यक्तियों से है, जो तीनों वेदों के ज्ञाता हों। एक ऐसा व्यक्ति जो ऋग्वेद का ज्ञाता हो, एक वह जो यजुर्वेद का ज्ञाता हो और एक वह जो सामवेद का ज्ञाता होय कम से कम ऐसे तीन व्यक्तियों से मिलकर एक सभा बनेगी जो कानून सम्बन्धी सन्देह की बातों पर निर्णय देगी। इस सन्दर्भ में मोटवानी का विचार है कि मनु ने विधायिका की रचना विशद् रूप से दी है। मनु ने न्याय व्यवस्था के लिए व्यवहार शब्द का प्रयोग किया है। व्यवहारके क्षेत्र में 18 विषयों को सम्मिलित करते हैं–ऋण लेना, धरोहर रखना, किसी वस्तु या भूमि का स्वामी न होने पर उसे बेच देना, अनेक व्यक्तियों का मिलकर संयुक्त रूप से कार्य करना, दान आदि में दी गयी सम्पत्ति या किसी वस्तु को क्रोध, लोभ या अपात्रता के कारण वापस ले लेना, नौकरों को वेतन या मजदूरों को मजदूरी न देना, पूर्व निर्णीत व्यवस्था को न मानना, क्रय विक्रय में विवाद उपस्थित होना, स्वामी तथा पालक में परस्पर विवाद होना, सीमा के विषय में विवाद होना, दण्ड पारूण्य, वाक्पारुण्य, चोरी करना, अतिसाहस करना, स्त्री का परपुरूष से सम्बन्ध, स्त्री–पुरूष–धर्म, पैत्रीक धन सम्पत्ति या भूमी का बटवारा करना, जुआ खेलना।

दण्ड के विषय में मनु द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त कौटिल्य के विचार को दोहराता तथा विकसित करता है। राज्य की उत्पत्ति और उसके उददेश्य के विषय में भी मनु और कौटल्य के विचार बहुत सीमा तक सामान्य हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनु के राजधर्म से सम्बन्धित विचार सातवें एवं आठवें अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णित हैं। इनके अध्ययन से शक्ति सम्पन्न राजा द्वारा प्रजा पालन एवं शत्रुओं की रक्षा का विस्तृत विधान ज्ञात होता है प्रत्येक युग में श्रेष्ठ शासन की स्थापना के लिए मनुस्मृति का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है।

याज्ञवल्क्य स्मृति इसका रचना काल 450 ई0 और 200 ई0 के मध्य माना जाता है। यह एक मौलिक ग्रन्थ की अपेक्षा संग्रह अधिक है। इसमे धर्मसूत्रों, मनु, विष्णु और पुराणों आदि से अनेक विचार लिए गये हैं। किन्तु इसकी शैली ने इसे लोक प्रिय बना दिया। याज्ञवल्क्य के परिवार का सम्बन्ध मिथिला और विदेह से बताया जाता है। परन्तु डा० जायसवाल के मतानुसार, इस ग्रन्थ की रचना मध्यदेश अथवा पश्चिमी भारत में हुई। यह ग्रन्थ ऐसे समय पर लिखा गया जबकि मलेच्छों का शासन था, किन्तु इसमें उनके प्रति किसी प्रकार की शत्रुता का संकेत नही मिलता। यह विशुद्धतः वैज्ञानिक ग्रन्थ है। लेखक के वैज्ञानिक और पक्षपातरहित दृ ष्टिकोण के कारण इस ग्रन्थ को सम्पूर्ण भारत में मान्यता प्राप्त हुई। अन्य पूर्वगामी आचार्यों के समान याज्ञवल्क्य अनुसार भी शासन के कार्यों का क्षेत्र सम्पूर्ण मानव जीवन तक विस्तृत है। मेधातिथि के मानवधर्म शास्त्र के श्लोकों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि राजा के देवत्व सम्बन्धी श्लोक केवल शब्द ही है। उनमें कानूनी शक्ति नही है। मनु के श्लोकों में उल्लिखित राजा के आदेश और कानून महत्वहीन मामलों से सम्बन्ध रखते हैं। अन्य हिन्दू विचारक भी यह नही मानते कि हिन्दू राजा अनुउत्तरदायी होते थे। याज्ञवल्क्य ने तो इस सिद्धान्त को माना ही नही है। वह तो राजा से कहता है कि उसके द्वारा किये गये अवैध कार्यों का परिणाम उसका सिंहासन से हटाया जाना और राजा का सपरिवार राज्य से निष्कासन होगा, इतना ही नही राजा को अधिकतम दण्ड भी दिया जा सकता है। मनु और याज्ञवल्क्य दोनों का मत है कि भ्रष्ट अधिकारियों की सम्पत्ति जब्त करके राजा उन्हें राज्य से निकाल दे। जो अधिकारी अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन न करें उन्हे जमनि का दण्ड देना चाहिए। इस प्रकार सरकारी अधिकारी प्रजा की लूट खसोट नहीं कर सकते थे।श याज्ञवल्क्य ने इस बात पर जोर दिया है कि जिसका जैसा अपराध हो, उस सोच विचार कर तथा जो जितने दण्ड के योग्य हो उसको उतना ही दण्ड दिया जाय।

कामन्दकीय नीतिसार राज व्यवस्था पर काव्य में लिखा गया प्रथम ग्रन्थ है । यद्यपि इसकी रचना संक्षिप्त है। किन्तु यह अर्थ से परिपूर्ण है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण गन्ध है। इसीकारणवश इस पर कालान्तर में अनेक टीकाँए लिखी गयीं और राज्य पर लिखे गये अनेक ग्रन्थों में इसके श्लोकों और उद्धरणों को दिया गया। अल्तेकर के मतानुसार यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र का सारांश मात्र है। कामन्दक ने अपने नीतिसार की प्रस्तावना में स्वयं कौटिल्य के वैदिक ज्ञान और उसके सफल प्रयास (नन्द राजा के विनाश के बाद चन्द्रगुप्त मौर्य को सिंहासन पर बिठानें) और अर्थशास्त्र के सागर से स्वयं द्वारा नीतिशास्त्र के अमृत को निकालने की प्रशंसा की है। कामन्दक ने अर्थशास्त्र के अन्य आचार्यों के मतों की विवेचना की है परन्तु कौटिल्य को गुरू मानते हुए कौटिल्य के तर्कों को स्वच्छन्दता पूर्वक काव्य रूप में अपनाया है। कामन्दकीय नीतिसार 19 सर्गो में विभाजित है तथा प्रत्येक सर्ग में 15 से लेकर 70 तक श्लोक सम्मिलत हैं। कामन्दक ने दण्ड की महत्ता का वर्णन किया है। उसने राजा और प्रशासन के आर्दशात्मक स्वरूप को लिखा है। उसने राजा के नैतिकता, कर्तव्य, कार्यकलाप और उत्तरदायित्व की चर्चा की है। कामन्दक ने अनेक जन विरोधी राजाओं, दरबारियों के कर्त्तव्यों, सप्तांग सिद्धान्तश, राजकुमारों की शिक्षा, राजाओं की व्यक्तिगत सुरक्षा, सैन्य विभाग पर नियन्त्रण की महत्ता व मण्डल सिद्धान्त का विवरण दिया है। तेरहवें सर्ग में कामन्दक ने एक नवीन सिद्धान्त–राज्य के विभिन्न अंगों के व्यसनों की विवेचना की चर्चा की है। इसमें राजा के मुख्य व्यसन निरन्तर शिकार खेलना (मृगया), जुआ खेलना (द्यूत), मद्यपान, स्त्री में आसक्ति, कठोर शब्दों का प्रयोग, कठोर रहना और धन को नष्ट करना है। मन्त्री के व्यसनों में आलस्य, धमण्ड, प्रमाद इत्यादि हैं। कामन्दक ने लिखा है कि राजा को सभी के व्यसन जानना चाहिए और उन्हें अपनी बुद्धि तथा शक्ति से अधूरेपन में ही नष्ट कर देने चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि कामन्द के समय राजा एवं मन्त्रीगण जनोत्थान के स्थान पर निजस्वार्थों को प्राथमिकता देने लगे थे। व्यसन से रहित राजा ही राज्य के व्यसन दूर करने में समर्थ होता है। जिस राजा के शास्त्र–रूपी चक्षु नहीं होते वह राजा अन्धा कहलाता है। राजा को पुरोहित, मन्त्री, सेनापति व अन्य अधि कारियों की नियुक्ति सावधानीपूर्वक सोच–समझकर करनी चाहिए। राजा को चाहिए कि जो जिस कार्य को जानता हो उसको उसी कार्य में नियुक्त करे।

प्राचीन भारत के राजतन्त्र के अध्ययन की दृष्टि से अर्थशास्त्र के बाद शुक्रनीति ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें राज्य अथवा शासन–तन्त्र की सैद्धान्तिक विवेचन नहीं की गयी है वरन् शासन–व्यवस्था को व्यवहारिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। शुक्र ने स्वयं कहा है, इस नीतिसार का जो राजा रात–दिन चिन्तन करेगा वही राजभार उठाने में समर्थ होगा। शुक्रनीति के समान दूसरी कोई नीति तीनों लोकों में नहीं हैय व्यवहारी लोगों के लिए शुक्र की ही नीति है और सब कुनीति है। शुक्रनीति में इसके पूर्वगामियों यथा–महाभारत, मनुस्मृति और कामन्दकीय नीतिसार से भी तथा अप्रत्यक्ष रूप में अर्थशास्त्र से विषय–समाग्री को व्यापक रूप से स्वच्छन्दतापूर्वक लिया गया है। यद्यपि कौटिल्य के अर्थशास्त्र की तुलना में शुक्रनीति एक छोटी रचना है, किन्तु अपने विषय के विस्तार में यह उससे अधिक बृहत है। वास्तव में, शुक्र ने अन्य शास्त्रों के सीमिति क्षेत्र की आलोचना की है। शुक्र ने नीतिशास्त्र (राजनीति) को शासनकला मानते हुए इसका उद्देश्य सामान्य सुख का प्रोत्साहन बतलाया। शुक्र ने राज्य के सप्तांग को स्वीकार किया है। शुक्र के अनुसार मन्त्रीः आँखें, मित्र, कान, कोष, मुख, सेनाय मन, दुगर्ू हाथ, राष्ट्र, पैर, ये राज्य–शरीर के अंग होते हैं। राजा राज्यरूपी शरीर का सिर है। शुक्र ने पहली बार हिन्दू राजनीतिक सिद्धान्त में राज्य के सात अंगों और जीवित प्राणी के शरीर के अवयवों के बीच पूर्ण साद्दश्य (दंसवहल) प्रस्तुत किया। आचार्य शुक्र के अनुसार राजा राज्यरूपी शरीर का और राज्यरूपी वृक्ष की जड़ होता है। राजा से राज्य की उन्नति होती है। राजा न हो तो प्रजा इस प्रकार नष्ट हो जाय जैसे नाविक के बिना समुद्र में नाव। धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति में राजा ही कारण होता है। संसार में वही अत्यन्त श्रेष्ठ होता है जिसे राज्य की प्राप्ति होती है। धर्म और अधर्म की शिक्षा से राजा युगों का प्रवर्तक होता है। शुक्र के मतानुसार राजा को मृगया, द्यूत और मदिरापान जैसे प्रमुख अवगुणों के अतिरिक्त काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान और मद को त्याग देना चाहिए।श शुक्र ने राजाओं के कर्तव्य (आचरण) को आठ प्रकार का बताया है– दुष्टों को दण्ड, प्रजा का पालन, राजसूय आदि यज्ञों को करना, न्याय से कोष बढ़ाना, राजाओं को करदाता बनाना, शत्रुओं का मर्दन करना, दान देना और भूमि का विस्तार बढ़ाना। शुक्र के अनुसार राजा अथवा राज्य के प्रमुख अधिकारीयों (प्रकृतियों) की संख्या आठ होनी चाहिए–सुमन्त्र (आय–व्यय का ज्ञाता), पण्डित, मन्त्री (नीति का ज्ञाता), प्रधान सचिव (सेना का ज्ञाता), अमात्य, प्राड्विवाक (लोक और शास्त्र नीति का ज्ञाता या वकील) और प्रतिनिधि (कार्य और अकार्य का प्रतिज्ञाता)। सभासद जनमत का प्रतिनिधित्व करते हैं। शासन–कार्य विभिन्न प्रमुख अधिकारियों, अध्यक्षों तथा राजकर्मचारियों को सौंपे गए। इस प्रकार सत्ता का सौंपा जाना भी निरंकुशता पर बड़ा प्रतिबन्ध था। शुक्र ने व्यवस्था दी है कि राज्य के विनियमों को व्यापक रूप से प्रसारित किया जाना चाहिए। शुक्र ने न्याय के प्रशासन में भी जनता को कुछ भाग प्रदान किया है।

नीतिवाक्यामृत की रचना दसवीं शती ईस्वी में सोमदेव सूरी ने की रचना थी। यह राजशास्त्र का शुद्ध ग्रन्थ है। ग्यारहवीं शती ई० के प्रथम चरण की राजनीतिक विचारधारा और संस्थाओं के अध्ययन के लिए यह सबसे अच्छा साधन है। नीतिवाक्यामृत को 32 समुद्देश्यों (अध्यायों) में बाँटा गया है। इसमें कुल 1,525 सूत्र हैं। जैन आचार्य होने के बावजूद सोमदेव ने अपने राजनीतिक विचार मुख्यतः अर्थशास्त्र स्मृति परम्परा से लिये, विशेष रूप से कौटिल्य और मनु द्वारा प्रतिनिधित परम्परा से। सोमदेव ने प्रशासन में अनुशासन को सर्वोच्च माना है। उसने राजशासन को चार भागों–आन्वीक्षिकी (नीतिशास्त्र), त्रयी (वेद), वार्ता (अर्थशास्त्र) और दण्डनीति में विभाजित किया। उसने राजा को दण्डनीति का सम्यक् प्रयोग करके प्रजा को पुरुषार्थों के प्राप्ति में सहायता करने का सुझाव दिया है। नीतिवाक्यामृत के अन्त में दी गई प्रशस्ति से विदित होता है कि सोमदेव ने यंशस्तिलकचम्पू नामक काव्य की रचना की थी। इसमें शासन–सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों का उसने वर्णन किया। सोमदेव ने हीगल से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मानव जीवन के लिए राज्य को मुख्य अच्छाई मानकर हीगल की भाँति विचार व्यक्त किए। सोमदेव ने राजा की नियुक्ति के अनेक सिद्धान्तों (यथा–वंशानुक्रम, आचार–सम्बन्धी, विक्रम या वीरता, बुद्धि, चरित्र व संस्कार सिद्धान्त) का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त राजा के गुणों एवं दुर्गुणों व व्यसनों की भी चर्चा की है। सम्पूर्ण नीतिवाक्यामृत राजनीति पर लिखे गये एक मौलिक निबन्ध की अपेक्षा एक साहित्यिक निबन्ध अधिक हैं। परन्तु सोमदेव के विचार स्पष्ट–दर्शिता और व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से परिपूर्ण हैं।

बृहस्पति अर्थशास्त्र राजनीति पर लिखी गयी एक लघु पुस्तक है। यह सूत्र के रूप में लिखी गई है। प्रशासन सम्बन्धी कुछ ही बिन्दुओं (राजा, मन्त्री, कूटनीति, दण्डनीति इत्यादि) पर इसमें चर्चा की गई है। बृहस्पति ने दण्डनीति को सर्वोच्च माना है। उन्होंने राजा एवं मन्त्रीयों के गुणों का भी वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त राजा और मन्त्रिमण्डल के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का भी वर्णन इसमें मिलता है। जनकल्याण के

सन्दर्भ में बहस्पति ने राजा को सुझाया है कि उसे राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने के साथ–साथ राज्य में धार्मिक स्थलों व उत्सवों को बढ़ावा देना चाहिए। तालाबों इत्यादि की मरम्मत द्वारा कृषि को प्रोत्साहन देना चाहिए। यात्रियों की सुविधाओं के लिए राज्य को सराय का निर्माण करवाना चाहिए। शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए तथा सभी प्रजा–जन की रक्षा के उपाय करने चाहिए। स्पष्ट है कि बहस्पति ने अपनी कृति में किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया ।

आदिश्वर चरित्र एवं लघ्वरर्ह–नीति ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों ग्रन्थों के रचनाकार जैन आचार्य हेमचन्द्र (1089 से 1173 ई०) हैं। वह गुजरात के शासक सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के संरक्षण में। हेमचन्द्र ने आदिश्वर चरित्र में जैन आचार्य जिनसेन के विचारों को आधार बनाया। इस ग्रन्थ में 63 जैन सन्तों की जीवनियाँ हैं। हेमचन्द्र ने सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को जिनसेन के आर्दशवादी विचारों के विपरीत व्यावहारिक दृष्टि से देखा। उसने जिनसेन के सिद्धान्तों को त्यागा तो नहीं, परन्तु वास्तविकता को अवश्य अपनाया। हेमचन्द्र ने व्यवहार और दण्डनीति पर विशेष ध्यान दिया। उसने साम, दाम, भेद और दण्ड के प्रयोग का सुझाव देते हुए युद्ध के संचालन में सभी प्रकार के उपायों को अपनाने की सिफारिश की। लघ्वरर्ह नीति चार भागों में विभाजित है– राजा और राज्य के अधिकारियों के गुण, युद्धकला और सार्वजनिक नीति के नियम, न्याय (व्यवहार) का प्रशासन, प्रायश्चितों के विभिन्न प्रकार। हेमचन्द्र का कथन है कि नागरिकों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर शस्त्रशक्ति के प्रयोग का अधिकार है। तत्कालीन प्रस्थितियों में यह एक क्रान्तिकारी कथन माना जा सकता है। उसने आगे लिखा है कि राजा को अपने कोष की वृद्धि केवल वैध उपायों द्वारा ही करनी चाहिए तथा अपराधियों को न्यायपूर्ण दण्ड देने चाहिए।

कृत्यकल्पतरू नामक ग्रन्थ का रचनाकार लक्ष्मीधर कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र (1114–1156 ई०) का महासन्धि–विग्रहिक (ज्येष्ठ विदेश मन्त्री) था। कृत्यकल्पतरू चौदह काण्डों में विभाजित है। यह एक संकलित ग्रन्थ है। इसका राजधर्मकाण्ड इक्कीस अध्यायों में विभाजित है। इस काण्ड के प्रथम दस अध्याय में राज्य की संरचना इस क्रम से दी गयी है– राजा, अधिकारी, शहरी और ग्रामीण क्षेत्र, राजा की आय, सेना और मित्र। राज्य की सुरक्षा नीति, राज्य मन्त्रणा, विदेश नीति सम्बन्धी षाड्गुण्य सिद्धान्त और राजा के कर्तव्यों का विवेचन किया है। शेष सात अध्यायों में हेमचन्द्र ने पुराणों के आधार पर राज्य के कल्याण हेतु उत्सवों, पूजा के कृत्यों और विविध पद्धतियों का वर्णन किया है। मनोल्लास की रचना 1050 ई0 के लगभग चालुक्य राजा सोमेश्वर ने की थी। मनोल्लास पाँच अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में साम्रज्यवादी नीति की चर्चा है। द्वितीय अध्याय में यद्यपि राजा के गुणों का वर्णन है परन्तु प्रजा के प्रति अपनायी जाने वाली नीति का स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है। राजा अपने सात या आठ मन्त्रियों के साथ महत्वपूर्ण विषयों पर अलग–अलग विचार–विमर्श करता था। मन्त्रियों का कार्य–क्षेत्र व कर्तव्य पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा वर्णित कार्यक्षेत्र व कर्तव्य की भाँति ही निर्धारित किया गया है। सोमेश्वर ने सैन्य–व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया है। स्थानीय प्रशासन के सन्दर्भ में लेखक ने एक, दस और सौ ग्रामों पर अधिकारियों की नियुक्ति का सुझाव दिया है।

युक्तकल्पतरू नामक ग्रन्थ परमार शासक राजा भोज (1011 से 1046 ईस्वी) से सम्बन्धित है। इसके मात्र 20 पृष्ठों में ही राजशास्त्र की चर्चा है। इसके प्रथम अध्याय में नीति से सम्बन्धित अनेक जानकारियाँ है परन्तु इसमें मौलिकता का अभाव है। द्वितीय अध्याय में विभिन्न पदाधिकारियों के योग्यताओं की चर्चा है। तुतीय अध्याय में अनेक कर्मचारियों के कार्यों और कर्तव्यों का वर्णन है। राजा भोज ने कोष को श्वास के समान आवश्यक माना है। कृषकों को सुरक्षा व सहायता प्रदान कर समृद्धि बढ़ाने की सिफारिश इस ग्रन्थ में की गई है। अध्याय पाँच से ग्यारह तक विदेश नीति की तथा अध्याय चौदह में न्याय, विधि व दण्ड की चर्चा है। दण्ड को समाज के स्थायित्व के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। स्पष्ट है यह पुस्तक पूर्वगामी लेखकों के दृष्टिकोणों का सारांश मात्र है।

मध्यकालीन भारत में भी हिन्दू राजशास्त्र पर ग्रन्थों की रचना हुई। जिससे मुस्लिम शासन के अर्न्तगत हिन्दू राज–व्यवस्था की रूपरेखा का ज्ञानार्जन होता है। चण्डेश्वर जो मिथिला राज्य में कार्णाट राजवंश के शासक हरिसिंह देव (1304–1324 ई०) का सन्धि–विग्रहिक मन्त्री था, ने राजनीति–रत्नाकर नामक ग्रन्थ की रचना की। सत्रहवीं शती ई० के प्रारम्भिक वर्षों में बुन्देला सामन्त राजा भगवन्तदेव की प्रतिष्ठा में नीलकण्ड ने भगवद्भास्कर की रचना की। मित्र मिश्र ने सत्रहवीं शताब्दी में ओरछा नरेश की प्रेरणा से वीरमित्रोदय नामक निबन्ध की रचना की। मित्रमिश्र ने याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका भी लिखा। दुर्भाग्यवश सभी परवर्ती ग्रन्थों मे

प्रशासन में किसी नवीन प्रणाली की चर्चा नही मिलती है परन्तु इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि प्राचीन भारतीय प्रशासनिक समीक्षकों (विचारकों) ने प्रशासन के सिद्धान्त प्रस्तुत किये थे, उनकी प्रासांगिकता परवर्ती कालों में भी विद्यमान रही।प्राचीन भारतीय राजशास्त्रियों ने प्रशासन की अनवरत रूप से समीक्षा की। ऐसा करने के पीछे उनका मुख्य उददेश्य यह था कि प्राचीन समय से चली आ रही ऐसी व्यवस्थाओं को त्यागा अथवा सुधारा जाय जो तत्कालीन समय के अनुकूल न हों। क्योंकि प्रशासनिक व्यवस्था को सदैव सजीव बना रहना चाहिए। यह व्यवस्था परिवर्तनशील होती है क्योंकि समाज परिवर्तनशील होता है। यह सर्वविदित है कि व्यवस्था समाज के लिए ही बनायी जाती है। इसीलिए समाज के परिवर्तन के साथ व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन अपरिहार्य है। व्यवस्था में परिवर्तन के लिए स्थापित व्यवस्था की समीक्षा करना आवश्यक होता है। इसी तथ्य को समझकर प्राचीन मनीषियों ने प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में समय–समय पर आवश्यक परिवर्तन करने के सुझाव दिये।

सन्दर्भ सूची :–

1. बी० ए० सलेटोर, एन्शेन्ट इण्डियन पॉलिटिकल थॉट एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स।
2. जार्ज ब्दूलर (अनु०), व लॉ ऑफ मनु व स्कैर्ड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज।
3. डी0 मैकनीज ब्राउन, द व्हाइट अम्ब्रेला।
4. केवल मोटवानी, मनुधर्मशास्त्र।
5. के० पी० जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी।
6. तलबोट व्हीलर ऐन्शेन्ट एण्ड हिन्दू इण्डिया।
7. के० पी० जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी।
8. राधाकुमुद मुकर्जी (अनु० वासुदेव शरण अग्रवाल), हिन्दू सभ्यता।
9. यू० एन० घोषाल, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पॉलिटीकल इण्डिया।
10. बेनी प्रसाद, थ्योरी ऑफ गवर्नमेन्ट इन ऐन्शेन्ट इण्डिया।
11. के०पी० जायसवाल, मनु एण्ड याज्ञवल्क्य।
12. ए०एस० अल्तेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन ऐन्शेन्ट इण्डिया।
13. डा० परमात्माशरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ।
14. सी० ड्रेकमीयर, किंगशिप एण्ड कम्यूनिटी इन अर्ली इण्डिया।
15. वी०पी० वर्मा, स्टडीज इन हिन्दू पॉलिटिकल थॉट एण्ड इट्स मेटाफिजिकल, फाउन्डेशन्स।
16. एन०सी० बंद्योपाध्याय, डिवलेपमेन्ट ऑफ हिन्दू पॉलिटी एण्ड पॉलिटिकल थ्योरीज, भाग–2